11

पढ़ाने के कुछ अनुभव

*आशा अय्यर**

सभी बच्चों के समझने का तरीका भिन्न होता है। इसलिए एक शिक्षक का दायित्व है कि वह सभी बच्चों को उनकी समझ के अनुसार पढ़ाए। शिक्षक को इस बात को लेकर सदैव सजग रहना चाहिए कि उसका पढ़ाया बच्चों की समझ में आ रहा है या नहीं। शिक्षक को कक्षा बच्चों की समझ के अनुसार केंद्रित रखनी चाहिए। कक्षा में कुछ भी नया कराने से पूर्व शिक्षक को उस विषय पर बच्चों का ज्ञान स्तर जाँच लेना चाहिए जिससे शिक्षक को पढ़ाने में और बच्चों को समझने में आसानी होगी। बच्चों को कक्षा में कैसे पढ़ाएँ? जानने के लिए पढ़िए यह लेख।

स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लिए छः साल हो चुके थे। किसी–किसी दिन जी छटपटाने लगता कि किसी को बिठाकर ज़बरदस्ती पढ़ाऊँ। यही बात जब मैंने अपने पति के एक मित्र के सामने रखी तो वे तपाक् से बोले, ''तो आ के पढ़ाओ ना हमारे स्कूल में।'' यह बात थी पिछले साल जून की।

स्कूल खुलने के अगले ही दिन उन्होंने मुझे संदेश दिया कि मैं पाँचवीं कक्षा की कुछ ऐसी कन्याओं को पढ़ा दूँ जो उम्र के आधार पर पाँचवीं में तो आ गई हैं, लेकिन जिन्हें पहली कक्षा के स्तर का भी ज्ञान नहीं है। मैंने एक सप्ताह बाद आने का वादा किया क्योंकि मुझे भी ठीक से तैयारी करनी थी। मैंने सफ़ेद व रंगीन चॉक, कुछ चार्ट, 'एकलव्य' से कार्डों का पिटारा और किताबों की दुकान से कुछ चित्रों वाली किताबें खरीद लीं।

यह एक शासकीय कन्या विद्यालय था। मैं जुलाई की शुरुआत में वहाँ पहुँची तो उन्होंने अविलंब पाँचवीं कक्षा की बारह लड़कियाँ हाज़िर कर दीं। मुझे अच्छा लगा क्योंकि इसका मतलब था कि वे सच में तैयार थे। आनन–फानन में एक साफ–सुथरी दरी और बोर्ड भी आ गया। वे मुझे घेरकर बैठ गईं। मैं आ तो गई थी, लेकिन एकाएक ऐसा लगा कि कुछ कर भी पाऊँगी कि नहीं। नौकरी के दौरान तो एक निश्चित पाठ्यक्रम पढ़ाना होता था और यहाँ सारा दारोमदार मुझ पर ही था।

* एकलव्य द्वारा प्रकाशित शैक्षणिक संदर्भ (सितंबर–अक्तूबर अंक) से साभार

मैं उन सबके नाम पूछने लगी। तभी मन में एक विचार आया। मैंने चॉक का एक टुकड़ा उठाकर सबसे पहले नाम बताने वाली लड़की को देकर कहा, "चलो, अपना-अपना नाम भी बोर्ड पर लिखती जाओ।"

एकाएक चुप्पी छा गई। खुसुर-फुसुर भी शुरू हो गई।

मैंने पूछा, "क्या हो गया?"

एक जो सबसे मुखर थी बोली, "इनको लिखना नहीं आता है ना?"

"तुम्हें आता है?"

"हाँ ऽ ऽ ऽ!"

"तो आओ, अपना नाम लिखकर दिखाओ।"

उसने लिखा, "लछमी"

मैंने कहा, "अब इसे पढ़ो।" तो उसने पढ़ा-'लछमी।'

मैंने उस समय कुछ कहना उचित नहीं समझा, लेकिन नोट कर लिया कि उसे 'क्ष' का उच्चारण सिखाना है। मुझे ये भी समझ में आ गया कि कामकाज 'ट्रायल एंड एरर' प्रणाली से चलाना है। उसके आगे आकर लिखने के कारण दो अन्य लड़कियों ने भी लिखने में थोड़ी-सी रुचि दिखाई।

अंजलि और रानू ने भी सही लिखा लेकिन बाकी ने कोशिश भी नहीं की।

शेष के नाम इस प्रकार थे: टीना, काजल, निशा, नेहा, कामिनी, सुमित्रा, रीना, शालू, पिंकी।

पहले दिन तो मैंने उन सबको अपना-अपना नाम लिखकर घर ले जाने के लिए कहा। अभ्यास करने के लिए नहीं कहा। मैं देखना चाह रही थी कि उनमें से कितनी स्वयं लिखकर लाती हैं। शालू और अंजलि ने अपने माता-पिता और भाई-बहनों के नाम भी मुझसे लिखवा लिए।

अगले दिन वे सब अपने नाम का अभ्यास करके आईं, सिवाय सुमित्रा के जिसे बिल्कुल भी अक्षर ज्ञान नहीं था। उस दिन मैंने उनके पूर्व ज्ञान के बारे में निम्न बातें जान ली थीं:

1. सभी त्रुटिरहित हिंदी बोलती थीं, मगर लक्ष्मी के सिवा किसी को भी मात्रा ज्ञान न था।
2. लक्ष्मी और अंजलि के सिवा किसी को 20 के आगे गिनती नहीं आती थी। लिखी हुई संख्याओं को वे पहचान नहीं पाती थीं।
3. उन्हें संख्याओं के साथ स्थूल वस्तुओं का संबंध समझ में नहीं आता था।
4. वे इकाई, दहाई आदि की संकल्पना से अनभिज्ञ थीं।
5. उनमें से 4 को छोड़कर सबको 10 तक के पहाड़े रटे हुए थे, मगर उन्हें पहाड़े क्या होते हैं, ये पता ही नहीं था।
6. उनमें से एक को भी जोड़ने-घटाने का अर्थ नहीं पता था।

मैंने सोचा ये बच्चियाँ पहली कक्षा में आकर बैठने वाली पाँच साल की अबोध बच्चियाँ नहीं हैं, जिनसे मेरी कोई भी हिचकिचाहट या भूल-चूक छिपाई जा सकेगी। अत: हर कदम फूँक-फूँककर रखना होगा।

मैंने क्या किया?

मैंने सबसे पहले तो यह तय किया कि उन सबको गणित और हिंदी एक साथ पढ़ानी होगी क्योंकि एक तो थोड़े-से समय में चार कक्षाओं

की पाठ्यवस्तु उन्हें सिखानी थी और दूसरे कोई भी अन्य विषय मैं उन्हें तब तक न पढ़ा सकती थी जब तक कि वे हिंदी पढ़ना-लिखना नहीं सीख जातीं। फिर पहली से चौथी तक की हिंदी व गणित की पुस्तकें अच्छे से देखकर यह निश्चित किया कि उन्हें किस क्रम से क्या-क्या और कितना पढ़ाना है।

मैंने कक्षा 1 व 2 की 'खुशी-खुशी' उठाई और उन्हें पढ़वाने के लिए पाठ तय किया।

पहला चरण

हिंदी वर्णमाला और बारहखड़ी के साथ ही हिंदी में अंक व शब्दों में लिखे अंकों के चार्ट ले जाकर वहाँ टाँगे।

सबसे पहले शरीर के अंगों के नाम बताना तय किया क्योंकि इस संबंध में उनका पूर्वज्ञान पर्याप्त होगा, ऐसा मेरा विश्वास था। मैंने गर्दन के ऊपर के उन अंगों के नाम पहले लिखवाए जिनमें 'अ' एवं 'आ' स्वर आते हैं जैसे बाल, गाल, कान, नाक, माथा, आँख आदि।

मैंने यह निश्चय किया कि चूँकि ये लड़कियाँ थोड़ी बड़ी हैं और इन्हें संसार का अनुभव भी है, अतः अक्षर ज्ञान करवाने के लिए परंपरागत प्रक्रिया न अपनाई जाकर अन्य तरीके से पढ़ाया जाए। इसी योजना के तहत अनुनासिकता को सम्मिलित कर लिया। 'आँख' बोलते समय जानबूझकर 'आँ' की अनुनासिकता पर बल दिया, कहा कुछ भी नहीं।

मैंने हर दिन यह भी नोट करना आरंभ किया कि मुझे भविष्य में उन्हें कौन-कौन सी बातें बतानी हैं?

उन्हें वर्णमाला पढ़ाने में एक और बात जो मददगार थी कि कक्षा में नियमित रूप से बैठने के कारण वे पुस्तक व श्यामपट्ट पर सभी वर्णों व मात्राओं को देखती रहती थीं। इसका लाभ मैंने उठाया।

अगले दिन हमने लिखना सीखा-हाथ, हथेली, कंधा, गरदन, पेट, पीठ, सिर, घुटना। हमने जाँघ, काँख, दाँत (ये शब्द यहाँ की बोलियों में भी हैं) भी ले लिए और उनमें 'आ' की मात्रा डालते हुए मैं दाएँ हाथ की तर्जनी और अँगूठे से अपनी नाक दबाते हुए 'आँ' कहती और चंद्रबिंदु लगाकर बताती कि नाक से बोलते हैं तो ऐसा निशान लगाते हैं। वे स्वयं कहने लगीं कि ''हाँ, इसे चंद्रबिंदु कहती हैं हमारी मैडम।''

तीसरे दिन तक तो उन सभी को बहुत आनंद आने लगा था। वे मेरे पहुँचने से पहले ही भीतर के आँगन में झाड़ू लगाकर, दरी बिछा लेतीं और इसके साथ ही वे मेरे लिए एक कुर्सी भी लगाकर रखतीं। हालाँकि मैं रोज़ उन सबके साथ नीचे ही बैठती थी।

मैं पहली बार समाज के वंचित वर्ग के बच्चों को पढ़ा रही थी इसलिए मुझे उदाहरण देते समय बहुत सावधानी बरतनी पड़ती। मुझे उनके चेहरे के हाव-भाव से लेकर स्वर के एक-एक उतार-चढ़ाव के प्रति अतिसंवेदनशील रहना पड़ता था। मैं उनसे व्यवहार करते समय निरंतर खाँड़े की धार पर चल रही थी, इसका मुझे आभास रहता था।

ध्वनियाँ और उच्चारण

एक निजी प्रकाशन द्वारा छापी गई हिंदी की पाठ्यपुस्तक में से बारहखड़ी के पन्नों की फोटो

कॉपियाँ करवाकर कर मैंने हर लड़की को एक प्रति दे दी, जिससे उनको घर में लिखने-पढ़ने की सुविधा हो जाए।

उनकी कक्षा में हमारी पढ़ाई आरंभ होने के सातवें दिन मैंने उन्हें अ,आ,इ, आदि क्रम से साँस के टूटने तक बोलते रहने को कहा। उन्हें तो ये खेल बड़ा ही अच्छा लगा। वे तन्मय होकर अ ऽ ऽ ऽ ऽ आ ऽ ऽ ऽ ई ऽ ऽ ऽ करने लगीं। सुमित्रा का ऽ ऽ ऽ ऽ कू ऽ ऽ ऽ ऽ क ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ भी करने लगी। मैंने उसकी इस तन्मयता को भाँपते हुए तुरंत उन्हें स्वर और व्यंजन का अंतर बताया।

स्वरों के निर्बाध होने एवं व्यंजनों का उच्चारण स्वरों की सहायता से किए जाने की बात समझाई। सुमित्रा को ही सामने बुलाकर मैंने उससे कहा कि वह 'क' को लगातार बोले और बाकी से कहा कि वे बताएँ कि वे 'क' लगातार सुन पा रही हैं कि 'क अ ऽ ऽ ऽ सुन पा रही हैं।

यह प्रश्न मुझे उनसे अनेक बार करना पड़ा, तब कहीं जाकर वे इसका महत्त्व समझ पाईं। मैंने 'प' की सहायता से यह अंतर समझाया कि दोनों होंठ मिलकर तुरंत हट जाते हैं और जिस पल ऐसा होता है, उतनी ही देर 'प' सुनाई देता है, उसके बाद केवल 'अ ऽ ऽ ऽ ही सुनाई देगा। इस बात को सिद्ध करने के लिए हमने 'पा' एवं 'पू' को भी बोलकर देखा एवं सुना कि होंठों के मिलने तक ही 'प' सुनाई देता है, उसके बाद केवल 'आ अ ऽ ऽ ऽ या 'ऊ ऽ ऽ ऽ ही सुनाई देता है।

इस प्रयोग से वे मेरी बात मान गईं। इसमें उन्हें इतना मज़ा आने लगा कि वे हर व्यंजन के साथ ये खेल करना चाहती थीं। चार-पाँच वर्णों के साथ ऐसा कर लेने के बाद मैंने सुमित्रा को सामने खड़ा करके हर वर्ण का उच्चारण स्थान एवं उसमें लगने वाले प्रयत्न के बारे में उनसे बातचीत की।

उस दिन कब बारह बज गए हमें पता ही नहीं चला। हर साल अपनी कक्षाओं में यह सब बताती थी, लेकिन जैसा आनंद इन बच्चियों के चेहरे पर मैंने देखा, वैसा शायद पहले कभी किसी के चेहरे पर नहीं देखा।

मैंने एक और बात उन सबसे कही (मुझे नहीं पता कि यह उचित था या नहीं), ''आज जो ये बातें तुम लोगों ने सीखी हैं ना, ये तुम्हारी कक्षा की किसी और लड़की को नहीं पता होंगी। हो सकता है कि तुमसे बड़ी कक्षाओं की लड़कियों को भी न पता हों।'' मेरा उद्देश्य था उनकी नज़रों में उनके पढ़ने के प्रयत्न की महत्ता बढ़ाना।

इसका सुपरिणाम अगले ही दिन मिल गया जब लक्ष्मी और नेहा मुझे गेट पर ही लेने आ गईं और कहने लगीं, ''हमारे स्कूल की आठवीं की लड़कियों को स्वर, व्यंजन तो पता हैं पर आपने जो बातें बताईं वो सब तो उन्हें पता ही नहीं।'' इससे उनके मन में इस संतुष्टि और विश्वास ने जगह बना ली कि वे मेरे पास बैठकर कुछ ऐसा सीख रही हैं जो दूसरों के द्वारा सीखी जा रही बातों से अलग है।

शुरुआती कुछ दिनों में उनसे लिखित काम कम ही करवाया, मैं ही बोर्ड पर लिखती रहती।

धीरे-धीरे उनकी ओर से आग्रह होने लगा कि ''हम भी लिखें?'' तो मैंने उन्हें पहले बोर्ड पर ही लिखने को प्रेरित किया। स्वर के साथ व्यंजन को किस प्रकार मिलाकर लिखते हैं, यह समझाने के लिए मैंने उन्हें बैसाखी के सहारे चलने वाले व्यक्ति का उदाहरण दिया। वे इस सरलता से समझीं कि मैं भी चकित रह गई।

बोर्ड पर क् + अ = क लिखकर भी सिखाया।

उसके बाद उन सबकी सहायता से 'ह' तक के सारे व्यंजन हमने एक ही दिन में हलन्त् हटाकर लिख डाले। उन्हें हलन्त् की संकल्पना समझाने में भी कोई कठिनाई नहीं हुई।

वर्ण सिखाते हुए ही मैं 'अ' युक्त शब्द भी बोर्ड पर लिखती जाती थी।

क् + अ = कमल

ख् + अ = खटमल

ग् + अ = गजक आदि, आदि।

इस सारे में हमें केवल एक सप्ताह लगा। इस एक सप्ताह मैं लगातार उनसे बात करती रही जिससे मुझे उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि पता चली और यह जान पाई कि उनके अभिभावकों की औसत शिक्षा दसवीं तक ही है।

गणित सीखने में रुचि

इस दौरान हमने गणित में काफी तेज़ी से तरक्की की। इसका मुख्य कारण था गणित में उन सबकी असीमित रुचि। वे जल्द-से-जल्द जोड़, घटाना, गुणा, भाग-सब सीख लेना चाहती थीं, जबकि गिनती उन सबको बीस से पचास तक ही आती थी और उसमें भी उन्हें इकाई, दहाई, सैकड़े का कोई ज्ञान न था। मैंने उनसे कहा कि ये सब सीखने के लिए पहले सौ तक की गिनती सीखना आवश्यक है। वे मेरी किसी भी बात पर सहमति जतातीं तो इस प्रकार मानो मुझ पर बहुत बड़ा एहसान कर रहीं हों, कहने लगीं, ''चलो! ऐसा कर लेते हैं।''

उन्हें संख्याएँ सिखलाते समय मैं स्पष्ट थी कि अंक की अमूर्त संकल्पना को मूर्त रूप में लाने के लिए उसके लिखित चिह्न और इन्द्रियसम्मत साक्ष्य का साथ होना अपरिहार्य है। इसके लिए एक पुस्तक रखकर, बोर्ड पर लिखकर और मुँह से भी बोलकर-एक साथ तीनों काम करके एक की संकल्पना देना उचित लगा। इसी कारण सौ कंकड़ बीनकर सात दिन तक बिलकुल पूजा भाव से प्रतिदिन हमने एक से सौ तक की गिनती की। एक कंकड़ रखना, मुँह से एक कहना, एक को अंक व शब्द दोनों में ही लिखना-ऐसा हमने पूरी सौ की संख्या तक किया।

इस पूरे दौरान मेरे मन में एक शंका और थी कि मैं तो कभी गणित की शिक्षिका रही नहीं, ऐसे में मुझे इन सबको गणित पढ़ाना चाहिए या नहीं? इसकी चर्चा जब मैंने अपने पति से की तो वे बोले कि ''जब तुम अपनी बेटी को विश्वासपूर्वक पाँचवीं तक की गणित पढ़ा सकी तो इन्हें क्यों नहीं? और सभी विद्यालयों में पहली से पाँचवीं तक हर शिक्षक को हर विषय पढ़ाना ही पड़ता है। तुमने तो बाकायदा आठवीं तक की गणित की पुनः तैयारी की है। डरो मत! मैं हूँ तो, जहाँ कहीं भी तुम्हें कोई कठिनाई आएगी, मैं उसे दूर करूँगा।'' इस बात ने मेरा आत्मविश्वास बढ़ाया। मेरे पति केंद्रीय विद्यालय में ही गणित के शिक्षक हैं।

इसके अलावा यह प्रश्न भी कहीं मेरे मन में घुमड़ रहा था कि इन बच्चियों की सहायता और कौन करने वाला है? इसे आप मेरा घमंड ना समझें, यह वास्तविकता है कि हमारे विद्यालयों में अच्छे से पढ़ने वाले बच्चों की सहायता करने वाले तो ढेरों मिल जाएँगे, लेकिन पिछड़ने वालों के लिए रुक के चलने वाले ना के बराबर।

ठोस वस्तुओं से जोड़ना-घटाना

अब बारी थी जोड़ सिखाने की। ऐसा नहीं कि मुझे कोई जल्दी थी, बल्कि उन सबको गिनती सीखने की बड़ी तीव्र इच्छा थी। सो मैंने अंक सिखाने के साथ ही छोटे-छोटे जोड़ सिखाने भी शुरू कर दिए। हर एक लड़की स्लेट नहीं ला सकती थी और वे जितनी गलतियाँ करतीं, उस हिसाब से उनके माता-पिता उन्हें कॉपियाँ लाकर न देते इसलिए हम बोर्ड पर ही सवाल करने लगे। इससे लाभ ही हुआ। उनकी नज़र में ये बहुत बड़ा विशेषाधिकार था क्योंकि अपनी कक्षा में तो वे पिछड़ी हुई बालिकाएँ थीं जिनके बोर्ड पर जाकर लिखने की बारी शायद ही कभी आ पाती।

मैंने नेहा से कहा कि वह अपनी पुस्तक सामने रखे, फिर काजल की रखवाई और पूछा, "अब यहाँ कितनी किताबें हो गई?"

उन्होंने जवाब दिया, "दो।"

"तो एक किताब और एक किताब कितनी हुई?"

उन्होंने दोबारा कहा, "दो किताबें।"

फिर मैंने कहा, "शाबाश!"

"अब अगर हम इसमें पिंकी की भी एक किताब मिला दें तो कितनी हो जाएँगी?"

"तीन!"

अब मैंने एक-एक कर तीन लड़कियों को खड़ा करके अभ्यास दोहराया। फिर मैं गिनती को दस तक ले गई। साथ में कहती जाती कि एक लड़की, दो लड़कियाँ, तीन लड़कियाँ........ दस लड़कियाँ। एक-एक जोड़कर अगली गिनती पर आने का पुनः अभ्यास करवाने के लिए एक-एक कर सबकी कलमें एक सीध में रखते हुए गिनवाया और हर बार कहती जाती कि-एक और एक, दो।

दो और एक, तीन।

तीन और एक, चार...... और इसी प्रकार 10 तक।

इसके साथ ही मैंने एक और काम किया कि बोर्ड पर 1 से 10 तक की गिनती एक के नीचे एक लिखी। फिर उसके आगे यूँ लिखा:

$$
\begin{aligned}
1 &= 1\\
1 + 1 &= 2\\
2 + 1 &= 3\\
3 + 1 &= 4\\
4 + 1 &= 5\\
5 + 1 &= 6\\
6 + 1 &= 7\\
7 + 1 &= 8\\
8 + 1 &= 9\\
9 + 1 &= 10
\end{aligned}
$$

इसके साथ ही मैं इन संख्याओं को बोलती भी जाती जिससे कि वे इस पूरी प्रक्रिया को समझ सकें।

अगले दिन मैं हिंदी में लिखी संख्याओं का चार्ट अपने साथ ले गई और जाते ही उसे बोर्ड

के ऊपर टाँग दिया। लक्ष्मी और नेहा को हिंदी पढ़नी आती थी, अतः उनसे मैंने अंक पढ़वाए और बैठी हुई लड़कियों से कहा कि वे अपने सामने रखे कंकड़ों को गिनते हुए दाईं ओर से बाईं ओर करती जाएँ।

इकाई, दहाई, सैकड़ा सिखाना भी कोई कम चुनौतीपूर्ण काम न होगा, इसका अंदाज़ा मुझे था। उसके लिए मैंने बहुत सोच-समझकर एक योजना बनाई। इनका 1 से 4 तक का पाठ्यक्रम मेरे दिमाग में था ही। 1 लिखने के लिए मैंने उन्हें गिनती 1 से आरंभ न करवा कर 0 से आरंभ करवाई। जब हम 10 पर आते हैं तो अधिकतर लोगों को मैंने 9 के नीचे 10 यूँ लिखते देखा है:

9
10

मुझे तो यही उचित लगा कि पहले उन सबको 0 की संकल्पना दूँ। इसके लिए मैंने उनका पूर्वज्ञान टटोला:

"शून्य का क्या मतलब होता है?"

"ज़ीरो! गोला! शून्य।"

"अच्छा, मेरे पास 12 पेंसिलें थीं और मैंने तुम सबको एक-एक दे दीं तो मेरे पास कितनी बचीं?"

"एक भी नहीं।"

"इस बात को अंकों में लिखना हो तो हम किस तरह लिखेंगे?"

वे चुप हो गईं। मैंने पुनः बोर्ड पर 1 से 10 तक के अंक एक के नीचे एक लिखे-

0
1
2
3
4
5
6
7
8
9
10

और उनसे पूछा कि "बताओ, इन में से हम कौन-सा अंक लिखेंगे जिससे पता चलेगा कि मेरे पास एक भी पेंसिल नहीं बची?"

अब वे सबकी सब तपाक् से बोलीं कि "0"

"हाँ, जब कुछ भी नहीं बचता तो हम 0 से उसे दर्शाते हैं।"

इकाई, दहाई और....

इस बात को मैंने विभिन्न उदाहरणों से उन्हें समझाया। और इसी क्रम में उन्हें एक कठिन लगने वाली बात भी समझाने की कोशिश की।

- हम सब गोले में बैठ गए। 100 कार्ड और 100 कंकड़ अपने बीच में रख लिए। मेरे पास कुछ और कंकड़ भी थे जो मैंने बाहर निकाल के रख लिए। नेहा से कहा कि वह बोर्ड पर एक सौ एक लिखे।
- अंजलि से कहा कि वह इकाई, दहाई, सैकड़ा के कार्ड अलग-अलग करके ज़मीन पर बिछा दे।
- अब हम सब नेहा को देखने लगे जो कि 100 लिखकर खड़ी हुई थी। मुझे उसकी ओर देखते देखकर वह बोली, "नहीं आ रहा।"
- "आओ, बैठो! हम देखें कि किस तरह लिखना है...."

- वे सब और पास आकर बैठ गईं। मैंने कहा कि चलो हम इन कार्डों से लिखने की कोशिश करें। 100 कंकड़ों का ढेर एक तरफ रखने के बाद मैंने एक कंकड़ उठाकर उस ढेर के पास रखा और पूछा, "अब कितने कंकड़ हुए?"
- 3-4 एक साथ बोलीं, "एक सौ और एक।"
- मैंने पूछा, "तो अब इसे अंकों में कैसे लिखेंगे?"
- वे मुझे देखते हुए बोलीं, "आप बताओ।"
- मैंने 100 का कार्ड रखके उसके इकाई के स्थान पर 1 का कार्ड रख दिया और उन सबको गौर करने का समय दिया। लक्ष्मी ने पूछा, "बीच में 0 क्यों आ गया है?"
- मैंने उसे याद दिलाया कि 0 से 9 तक इकाई के अंक होते हैं, फिर 10 से 99 तक दहाई के।
  और 100 से 999 तक सैकड़ा के। अब हमारे पास 100 हैं और है 1, दहाई की कोई संख्या अभी नहीं है इसलिए हम दहाई की जगह एक 0 रख रहे हैं।

उन्हें समझ नहीं आया। तब मैंने आगे बात बढ़ाई।

"देखो, मैं 11 और कंकड़ इस ढेर में मिलाती हूँ तो एक सौ एक में कुल कितने मिल जाएँगे, गिनकर बताओ।" वे गिनने लगीं और कुछ ही पलों में सही उत्तर दे दिया कि 112!

मैंने कार्डों की ओर इशारा करके कहा कि "इनसे 12 बनाओ और 100 के कार्ड पर रखो।" एक-दूसरे से सलाह मशविरा करते हुए उन्होंने ठीक से 112 बना दिया। तब मैंने उनको समझाया कि "अब इकाई में 2, दहाई में 1 और सैकड़े में भी 1 आया न?"

इस तरह से हमें लगभग पाँच दिन तक अभ्यास करना पड़ा, मगर अंततः उन सबको इकाई, दहाई व सैकड़े का खेल समझ में आ गया।

अब बारी थी पहाड़े सिखाने की!

मुझे घोर अचरज हुआ था कि उन सभी को 10 या 12 तक के पहाड़े याद थे, लेकिन जब मैंने जानना चाहा कि पहाड़ा क्या होता है तो वे बोलीं, ''दो एका दो। दो दूना चार! दो तीया छो, ये होता है पहाड़ा!'' और हँसने लगीं।

फिर से कंकड़ों की सहायता लेते हुए मैंने पहाड़ा क्या होता है, यह समझाया।

2-2 के 10 जोड़े रखकर उन्हें गिनने को कहा। उत्तर तो 20 ही आना था।

फिर मैंने सुमित्रा से 2 का पहाड़ा सुनाने को कहा। वह बोलती जाती और मैं 2-2 करके एक तरफ लगाती जाती। वे उत्सुकता से देखती जा रही थीं। जब वह 'दो दहा में बीस' पर पहुँची तो मैंने 2-2 कंकड़ हटाके दूसरी ओर रखते हुए पूरा पहाड़ा फिर से बोला और कहा, ''कुछ समझ में आया?'' तो वे मुझे देखती रहीं पर कुछ बोलीं नहीं।

मैंने ही समझाया कि एक ही संख्या को बार-बार जोड़ने को ही पहाड़ा कहते हैं। इस बात को सिद्ध करने के लिए मैंने उन्हें 3-3 के समूह में बाँटा और प्रत्येक को 2, 3, 4 और 5 कंकड़ों के 10-10 समूह बनाकर फर्श पर रखने के लिए कहा। फिर पहले समूह को दूसरों से जोड़कर उसका योग वहीं फर्श पर

चॉक से लिखते जाने को कहा। कुछ देर में ही उनके पास 4 पहाड़े तैयार थे!

गुणा और बराबर के चिन्हों का मतलब समझाते हुए फिर बड़ी ही सरलता से उन्हें पहाड़े लिखना सिखाना चुटकियों में हो गया।

उसके आगे के पहाड़े लिखने के लिए उनकी ही तरफ से एक सुझाव आया कि "अब हम कॉपी में लकीरें खींचकर पहाड़े लिख लेंगे।"

और मुझे लगा कि "अंत भला तो सब भला!"

इसके बाद, उनके अनुभवों से जुड़ी वस्तुओं के आधार पर मैंने अभ्यास के लिए कई सवाल दिए। जैसे–

1. एक बकरी के लिए एक किलो पत्तियाँ लगती हैं तो तीन बकरियों के लिए कितने किलो लगेंगी?
2. एक कमीज़ में लगाने के लिए चार बटन लगते हैं तो पाँच कमीज़ों के लिए कुल कितने बटन लगेंगे?
3. मैं एक लड़की को दो बिस्कुट देती हूँ तो नौ को कितने देने पड़ेंगे? आदि।

इस सारी प्रक्रिया को करते हुए मेरे मन में जो बातें बार–बार आ रही थीं उन्हें बताए बिना इस लेख को खत्म करना उचित न होगा। ये वे बातें हैं जो केंद्रीय विद्यालय में नौकरी करते समय भी मेरे मन में उठती रही हैं।

हम पढ़ाते समय कोई खतरा मोल लेना नहीं चाहते और ऐसा न करने के लिए हमारे पास एक–से–एक लाजवाब तर्क होते हैं, जैसे, हमें एक निश्चित समय में कोर्स पूरा करना होता है, हमें बेकार का पेपरवर्क बहुत करना होता है, कमज़ोर बच्चों को पढ़ा ही देंगे तो कौन–सा राष्ट्रपति पुरस्कार मिलने वाला है आदि, आदि।

अगर कोई शिक्षक या शिक्षिका लीक से हटकर कुछ करते भी हैं तो उन्हें अनेक प्रकार की आलोचनाओं का शिकार होने के साथ ही ज़बरदस्ती पैदा की गई अनेक अरुचिकर परिस्थितियों से जूझना पड़ता है। वो जो अतिरिक्त समय ऐसे हितकारी काम के लिए लगाते हैं उसे अक्सर कहीं किसी अर्थहीन काम में खराब करवा दिया जाता है, खासतौर से ऐसे कामों में जिन्हें कोई भी अन्य शिक्षक/शिक्षिका कर सकता/सकती है, या फिर स्टाफ रूम में सहकर्मियों की फब्तियों का शिकार होना पड़ता है। सामान्यत: किसी भी शिक्षक या शिक्षिका का कार्य उसके सहकर्मियों की मदद, प्रोत्साहन या आलोचना से बहुत हद तक तय और प्रभावित होता है।

❑❑❑